IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं पर्यावरणीय सरोकार ई.पू. प्रथम शताब्दी तक एक विश्लेषण

1. डॉ . संगीता पेठिया

सहायक प्राध्यापक, इतिहास

क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भोपाल

2. पूजा रैकवार

अतिथि संकाय, इतिहास

क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भोपाल

शोध सारांश :

पर्यावरण शिक्षा आज सभी जगह विचार-विमर्श का एक महत्वपूर्ण मुद्दा हो गया है। परंतु यह भारतीय संस्कृति का अहम हिस्सा हमेशा से ही रहा है। इसका दर्शन व चिंतन जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। जिसमें प्रकृति को सर्वोपरि माना है। वास्तव में भारतीय सभ्यता की पहचान ही पर्यावरण मित्र सभ्यता के रूप में जानी जाती है। भारतीय संस्कृति में ऐसी कई पारंपरिक प्रचलन धार्मिक विश्वास रीतियों व लोक कला सभी में पर्यावरण संरक्षण के प्रति अपनी कटिबद्धता के साथ-साथ पर्यावरण के साथ-साथ प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित किया है। उपनिषद में लगभग 2000 वर्ष पूर्व हम इसका संदर्भ पाते है, जो इस प्रकार है "वह संपूर्ण ब्रह्माण्ड उस अलौकिक अद्वितीय शक्ति द्वारा निर्मित है जिसका उद्देश्य संपूर्ण मानव का कल्याण है। अतः हर सुविधा को भोगते हुए पृथ्वी पर मौजूद हर प्रजाति के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए दूसरों के अधिकारों का हनन ना करे।"

इस विषय का अध्ययन इसलिए आवश्यक है कि इनके द्वारा हमारे परिस्थितिकीय तत्व को बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आज जब हम अपने चारों देखते हैं कि विकास की इस आधुनिक दुनिया में जहाँ पर्यावरणीय संतुलन के बारे में संचेतना में कमी के कारण ही पर्यावरण संकट की स्थिति उत्पन्न हुई है। इसके विपरीत हजारों वर्ष पूर्व ऐसी परंपरा विद्यमान थी, जिसमें विकास के साथ-साथ पर्यावरण चेतना भी थी।

की-वर्ड :- पर्यावरण, संरक्षण, परम्परा, संस्कृति, पशु स ंस्कृति, वर्षवास।

प्रस्तावना :

आज से लगभग उस काल की कल्पना करें तो पाते हैं कि जब मानव का जीवन प्रारंभ हुआ था। तब ये धरती चारों ओर से पेड़ पौधे, नदी, सागर, पर्वतों से घिरी थी। मानव ने अपना जीवन पर्यावरण के तमाम प्रिय अप्रिय घटनाओं के साथ विकसित किया और विकास की तरफ अग्रसित हुआ। किन्तु इस प्रकिया में कभी भी मानव का प्रकृति के साथ रिश्ता नहीं टूटा। जिसके प्रमाण आज भी भीमबेटका और आदमगढ़ जैसे प्रागैतिहासिक स्थलों पर आदिमानव द्वारा बनाएं चित्रों के माध्यम से ज्ञात होता है कि मानव का प्रकृति के साथ कितना गहरा रिश्ता था। इसके उपरांत भारत की प्रथम नागरीकृत सभ्यता जिसे सिंधु सभ्यता के नाम से जाना जाता है। जिसके अवशेष मात्र मिलते हैं जो यह संकेत देते हैं कि किस प्रकार विकास की ऊंचाई पर मानव ने जमीन को संवरा। सिंधु सभ्यता के नगर अपने नियोजन के लिए जाने जाते हैं। जिससे ज्ञात होता है कि उस समय मानव ने किस प्रकार अपशिष्ट जल के लिए नालियां बनाई जो साफ पानी में नहीं मिलती थीं और कचरे को भी खुली सड़क पर नहीं फेंका जाता था। जो कि पर्यावरण चेतना के महत्व को बताते हैं। इसके उपरांत वैदिक कालीन भारत के प्रारंभिक चरण में पाते हैं कि कैसे मानव और पर्यावरण का रिश्ता रहा है। वैदिक काल में प्रकृति को एक शक्ति के रूप में पूजा जाता था। पर्यावरण को नुकसान पहुंचाने पर दंड की व्यवस्था की गई थी। इसी क्रम में 6 वीं शताब्दी ई पू.के भारत में बौद्ध और जैन दर्शन की नीतियों में जीव अहिंसा और करुणा को महत्व दिया है। मौर्य युगीन भारत में भी पर्यावरण संरक्षण को महत्व दिया गया था। कानून की अवेहलना करने पर दंड का प्रावधान था। सम्राट अशोक के काल में बड़े पैमाने पर शिलालेख मिलते हैं जो जीव अहिंसा और पशु चिकित्सा की जानकारी प्रदान करते हैं। जिनकी प्रासंगिकता वर्तमान में भी विद्यमान है।

शोध प्रश्न :

1. प्राचीन भारतीय परंपराओं में पर्यावरण चेतना का अध्ययन ।

2.प्राचीन भारत में मानव-पर्यावरण सह-संबंधों का अध्ययन ।

3. पर्यावरण संरक्षण में यज्ञों की भूमिका का अध्ययन।

4. प्राचीन भारतीय परंपराओं में पर्यावरण संरक्षण में जन सामान्य की भूमिका का अध्ययन।

वैदिक काल में पर्यावरण सरोकार :

वेदों में पर्यावरण संरक्षण पर गहन चिंतन के तत्त्व प्राप्त होते हैं। पृथ्वी, जल, वायु और आकाश की शुद्धि और इनको प्रदूषण से बचाने के अनेक मंत्रों में निर्देश है। पर्यावरण के संघटक तत्त्व कौन से हैं, विश्व के रक्षक कौन से तत्त्व है, पर्यावरण की शुद्धि किस प्रकार हो सकती है तथा पर्यावरण संरक्षण की क्या विधियाँ थी? इनका विस्तारपूर्वक जानकारी प्राप्त होती है। अथर्ववेद में वर्णन है कि पर्यावरण के संघटक तत्त्व तीन हैं: जल, वायु और ओषधियाँ। ये भूमि को घेरे हुए हैं और मानवमात्र को प्रसन्नता देते हैं, अतः इन्हें 'छन्दस्' (छन्द) कहा गया है। इनके नाम और रूप अनेक हैं, अतः इन्हें 'पुरुरूपम्' कहा गया है। प्रत्येक लोक को ये तत्त्व जीवन-रक्षा के लिए दिए गए हैं।'

त्रीणि छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम्।

आपो वाता ओषधयः तान्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि ।।(अथर्ववेद)[1]

साधारणतया यह समझा जाता था कि जल और वायु ही पर्यावरण के प्रमुख घटक हैं, परन्तु इस मंत्र में स्पष्ट रूप से ओषधियों को भी पर्यावरण का एक प्रमुख घटक माना गया है। जिस प्रकार जल और वायु के बिना जीवन असंभव है, उसी प्रकार वृक्ष-वनस्पतियों के बिना भी जीवन का अस्तित्व संभव नहीं है। सर्वप्रथम वनस्पतियों के महत्त्व पर प्रकाश डालने का श्रेय वेदों को है। वेदों की ऋचा में वर्णन है कि जहाँ शिष्य ऋषि से प्रकृति व मनुष्य के बीच के संबंध व निर्भरता पर प्रश्न करता है वहा ऋषि कहते है -

1.अथर्ववेद, 18.1.17

माता भूमि पुत्रोहम् पृथ्वीयाः।[2]

अर्थात् पृथ्वी हमारी माता व हम सभी उसकी संताने है। जब शिष्य पृथ्वी की प्रकृति के बारे में प्रश्न करता है, तो ऋषि उत्तर में कहते है -

जना विबाति बहुधा विवाकसम्

नाना धर्मानाम् पृथ्वी यथाकसम्

सहस्रा धरा द्रवित्स्य ये दुहम्

ध्रुवेना धमुरेक पस्पुरन्ति[3] ।।(अर्थववेद् का पृथ्वी सुक्त)

अर्थात पृथ्वी पर बर्फ से ढंके पहाड़ व पर्वत श्रृंखलाएँ हैं। घने जंगल व विभिन्न रंगों की मिट्टी अथवा मृदा है, जिसमें विभिन्न तरह ही जड़ी-बूटियाँ पाई जाती है। पृथ्वी के गर्भ में अग्नि पाई जाती है। सूर्य ऊर्जा का बहुत बड़ा स्त्रोत है। जो प्रकृति को एक विशेष सौंदर्य व खुश्बू से ओतप्रोत करता है व इसे सम्पन्न करता है।

प्राचीन ग्रंथ जैसे अर्थववेद में तीन तरह के आवरण की चर्चा की है, जिसे छन्दमसी (Chhandmsi) कहते है जो, जल, वायु व पेड़ पौधों अथवा जड़ी बूटियों में मिलकर बनी है। पृथ्वी को वैश्वम्भरा भी कहा जाता है, क्योंकि यह ब्रह्माण्ड का प्रतिनिधित्व करती है जिसमें तरह-तरह की जड़ी-बूटियाँ, महासागर, नदियों पर्वत व पहाड़ पाये जाते हैं। ऐसे सभी तथ्य हमारे वेदों में जिन्हें शामिल किया गया है मानव की पर्यावरण के प्रति चेतना है। उपनिषद के अनुसार ब्राह्मण पाँच तत्वों से मिलकर बना है पृथ्वी अथवा भूमि, जल, प्रकाश अथवा दीप्ति अथवा चमकीलापन, हवा तथा अनंतता अथवा व्योम् संबंध को भरने वाला।

प्रकृति ने इन सभी तत्वों व जीवों के बीच सामंजस्य स्थापित किया है। इस के सभी एक तत्व में ही हलचल अथवा अंतर आने पर प्राकृतिक संतुलन बिगड़ जाता है तथा पृथ्वी पर पाये जाने वाले सभी जीवों पर इसका प्रभाव दिखाई देने लगता है।

वैदिक काल में मनुष्य ने प्रकृति में इन सभी तत्वों को दैवीय शक्ति के रूप में पूजा और समझा। ऋगवेद की ऋचाओं में प्राकृतिक तत्वों जैसे वायु, पानी, पृथ्वी सूर्य, बारिश, हवा, तूफान, सूर्यास्त, उषा, इत्यादि की प्रार्थनाओं तत्वों के प्रति आस्था व पूज्य भाव ने ही हमें पर्यावरण संरक्षण की ओर प्रेरित किया। अथर्ववेद में ही वायु और सूर्य के महत्त्व का वर्णन करते हुए कहा गया है कि -

युवं वायो सविता च भुवनानि रक्षथः[4]।(अथर्ववेद)

अनुवाद :- तुम दोनों संसार के रक्षक हो! तुम अन्तरिक्ष में व्याप्त हो। तुम ही सभी प्रकार के रोगों को नष्ट करते हो।

वायु के महत्त्व का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वायु में दो गुण है-

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद् रपः।

त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे ।।

2. अथर्ववेद, पृथ्वी सूक्त कांड, 12.1.12

3.अथर्ववेद, पृथ्वी सूक्त कांड, 12.1 मंत्र 45

4. अथर्ववेद, चतुर्थकांड, सूक्त 25.3

अनुवाद :- प्राणवायु के द्वारा मनुष्य में जीवनशक्ति का संचार करना और अपान वायु के द्वारा सभी दोषों को शरीर से बाहर करना। इसलिए वायु को विश्वभेषज कहा गया है, क्योंकि यह सभी रोगों और दोषों को नष्ट करता है।

वायु में अमृतः वायु के महत्त्व पर ऋग्वेद में कहा गया है-

यददो वात ते गृहे अमृतस्य निधिर्हितः ।

तेन नो देहि जीवसे[5]।(ऋग्वेद)

अनुवाद :- हे वायु, तुम्हारे पास अमृत का खजाना है। तुम ही जीवनशक्ति के दाता हो। तुम संसार के पिता, भाई और मित्र हो। तुम सब रोगों की ओषधि हो।

नू चिन्नु वायोरमृतं वि दस्येत्[6]।(ऋग्वेद)

अनुवाद :- वायु में अमृत अर्थात् आक्सीजन (Oxygen) है। उसे नष्ट न होने दें। इसका अभिप्राय यह है कि ऐसा कोई कार्य न करें, जिससे वायु में आक्सीजन की कमी हो।

यज्ञ और पर्यावरण चिंतन :

चारों वेदों में यज्ञ के महत्व का बहुत अधिक वर्णन किया गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि यज्ञ ही वह विधि है, जिसके द्वारा प्राकृतिक सन्तुलन बनाए रखा जा सकता है।[7] यज्ञ के द्वारा पर्यावरण की सुरक्षा, वायुमंडल की पवित्रता, विविध रोगों का नाश, शारीरिक और मानसिक उन्नति तथा रोग निवारण के कारण दीर्घायु की प्राप्ति होती है। यज्ञ के द्वारा भू-प्रदूषण, जल-प्रदूषण, वायुप्रदूषण और ध्वनि प्रदूषण को दूर किया जा सकता है। इसलिए वेदों में यज्ञ पर इतना बल दिया गया है। यज्ञ या अग्निहोत्र वह वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा वायुमंडल में आक्सीजन और कार्बन डाई आक्साइड का सन्तुलन बना रहता है। प्रकृति में एक चक्र की व्यवस्था है, जिसके अनुसार प्रत्येक पदार्थ अपने मूल स्थान पर पहुँचता है। इसी के आधार पर ऋतुचक्र, वर्षचक्र, अहोरात्रचक्र, सौरचक्र, चान्द्रचक्र आदि प्रवर्तित होते हैं। इस प्राकृतिक चक्र को ही पारिभाषिक शब्दावली में यज्ञ कहा जाता है। यह प्राकृतिक यज्ञ विश्व में प्रतिक्षण चल रहा है। ऋग्वेद और यजुर्वेद में इस प्राकृतिक यज्ञ का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वर्षचक्ररूपी यज्ञ में वसन्त ऋतु घी है, ग्रीष्म ऋतु समिधा और शरद् ऋतु हव्य। वसन्त के बाद ग्रीष्म ऋतु, ग्रीष्म के बाद वर्षा और वर्षा के बाद शरद् ऋतु और शरद् के बाद वसन्त। इस प्रकार यह वर्षचक्र पूरा होता है।

यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।

वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद् हविः[8] ।।(ऋग्वेद)

यह प्रक्रिया अणु, परमाणु से लेकर सूर्य, चन्द्र आदि तक सर्वत्र चल रही है, इसका ही नाम यज्ञ-प्रक्रिया है। इसके द्वारा ही सृष्टि के प्रत्येक कण में नित्य परिवर्तन हो रहा है और सृष्टि-चक्र चल रहा है। अतएव यजुर्वेद में कहा गया है कि यह यज्ञ सृष्टिचक्र का केन्द्र है।

5.ऋग्वेद, मंडल 10, सूक्त 186, ऋचा 3

6.ऋग्वेद, मंडल 6, सूक्त 37, ऋचा 3

7. द्विवेदी कपिलदेव, वेदों में विज्ञान, विश्व भारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर

8. ऋग्वेद, मंडल 1, सूक्त 164, ऋचा 35

अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः[9]।(ऋग्वेद/यजुर्वेद)

इसी प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए ऋग्वेद में कहा गया है कि यज्ञ के द्वारा द्युलोक को प्रसन्न किया जाता है और द्युलोक वर्षा के द्वारा पृथिवी को तृप्त करता है। यज्ञ से मेघ और मेघ से वर्षा होती है।

भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति, दिवं जिन्वन्त्यग्नयः[10]।(ऋग्वेद)

इसी बात को गीता में कहा गया है कि यज्ञ के द्वारा देवों को प्रसन्न करो और देवता वर्षा के द्वारा तुम्हें प्रसन्न करें। इस प्रकार परस्पर आदान-प्रदान से तुम्हारी श्रीवृद्धि हो।

देवान् भावयतानेन, ते देवा भावयन्तु वः।

परस्परं भावयन्तः, श्रेयः परमवाप्स्यथ[11] ।।"(गीता)

यजुर्वेद में उत्तम कृषि के लिए यज्ञ को आवश्यक बताया गया है। यज्ञ से बादल, बादल से वर्षा और वर्षा से उत्तम कृषि का वर्णन है।

कृषिश्च में वृष्टिश्च में, यज्ञेन कल्पन्ताम्[12]।(यजुर्वेद)

यजुर्वेद में यज्ञ का इतना अधिक महत्त्व वर्णन किया गया है कि यज्ञ से सभी प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं। यज्ञ से पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक के सभी दोष या प्रदूषण दूर होते हैं। यज्ञ शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति का साधन है। यजुर्वेद के अध्याय 18 के 1 से 29 मंत्रों में यज्ञ से सभी प्रकार की कृषि, वर्षा, ऊर्जा, दीर्घायुष्य, वृक्ष-वनस्पतियों की समृद्धि, अन्नसमृद्धि, बौद्धिक और आत्मिक उन्नति, शारीरिक पुष्टि, नीरोगता, प्रदूषण-नाशन के द्वारा सुख-शान्ति की प्राप्ति का उल्लेख है। छान्दोग्य उपनिषद् में यज्ञ को पर्यावरण प्रदूषण के निराकरण का सर्वोत्तम माना गया है।

यज्ञ में प्रयुक्त द्रव्य :

यज्ञ में समिधा, घृत, सामग्री और स्थालीपाक का प्रयोग होता है। इनके लिए कुछ विशेष नियम हैं, उनका पालन आवश्यक है। जितना बड़ा या छोटा यज्ञ करना होता है, उसी अनुपात से यज्ञकुण्ड बड़ा या छोटा होता है। शुल्बसूत्र ग्रन्थों में यज्ञकुण्डों के बनाने की वैज्ञानिक विधि दी गई है। ज्यामिति की दृष्टि से शुल्बसूत्रों का बहुत वैज्ञानिक महत्त्व है।

1. समिधा - समिधा के लिए ऐसे वृक्षों का चयन किया गया है, जिनसे कार्बन डाइ-आक्साइड की मात्रा बहुत कम निकलती है और जो शीघ्र जल जाते हैं। इनका कोयला नहीं बनता, अपितु राख ही बनती है। इनसे धुआँ भी बहुत कम बनता है। कार्बन डाई ऑक्साइड, कम बनने से इनसे हानि की संभावना नहीं रहती। अतएव समिधा के लिए आम, गूलर, पीपल, शमी, पलाश (ढाक), बड़, बिल्व (बेल) आदि का ही विधान है।[13] ठोस लकड़ियाँ शीशम आदि निषिद्ध हैं।

2. घृत - घृत (घी) में भी गाय का घी सर्वोत्तम माना गया है। घी यज्ञ का प्रधान द्रव्य है। यह शरीर को तेज और बल देता है। यज्ञ में डाला हुआ घी रोग-निरोधक है और वायुमंडल को शुद्ध करता है। यह विषनाशक भी है, अतः साँप के काटे

9. ऋग्वेद, मंडल 1, सूक्त 164, ऋचा 35

10.ऋग्वेद, मंडल 1, सूक्त 164, ऋचा 51

11. विष्णु प्रकाश का भाष्य, भगवद्गीता, अध्याय 3, श्लोक 11

12. यजुर्वेद, मंडल 18, संहिता 9

13. द्विवेदी कपिलदेव, वेदों में विज्ञान, विश्व भारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर

हुए को घी पिलाया जाता है। पुराने घी को सुंघाने से उन्माद रोग दूर होता है। यज्ञ में घी का प्रयोग वायु प्रदूषण को दूर करने का उत्तम साधन है। (अथर्व. 6.32.1)

3.सामग्री - सामग्री यज्ञ में डाली जाने वाली हव्य वस्तुओं को सामग्री कहते हैं। हव्य वस्तुएँ चार प्रकार की हैं (1) सुगन्धित कस्तूरी, केसर, अगर, तगर, चन्दन, जायफल, इलायची, जावित्री आदि। ये सभी अग्नि में पड़कर सुगन्धित वायु देते हैं और वायुमंडल को शुद्ध करते हैं। (2) पुष्टिकारक इनमें घृत के अतिरिक्त दूध, फल, मूल, कन्द, गेहूं, चावल, उड़द, तिल आदि पदार्थ है। यज्ञ में प्रयुक्त ये पदार्थ मनुष्यमात्र के शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाते है। रोगनाशक सोमलता, गिलोय, गूलर, अपामार्ग (चिरचिटा) आदि ओषधियाँ। ये रोगनाशक पदार्थ यज्ञ में प्रयुक्त होकर विभिन्न रोगों को दूर करते हैं। यज्ञ-चिकित्सा (यज्ञोपैथी) में अलग-अलग रोगों में अलग-अलग ओषधियों को यज्ञ में डालने का विधान है। मिष्ट पदार्थ मीठी चीजें, जैसे गुड़, शक्कर, चीनी, किशमिश, छुहारा, द्राक्षा (दाख, अंगूर) आदि। मिष्ट पदार्थों में वायु-मंडल को शुद्ध करने की असाधारण शक्ति होती है।

4. स्थालीपाक - स्थलीपाक विशेष आहुतियों के लिए स्थालीपाक का उपयोग होता है। स्थालीपाक में लड्डू, खीर, मोहनभोग, मीठा चावल, बिना नमक की खिचड़ी, हलुआ, अपूप (पूआ) आदि है। चावल, खिचड़ी आदि में भी घी डालकर ही आहुति देने का विधान है। महर्षि दयानंद द्वारा मोहनभोग बनाने की यह विधि दी है सेर भर घी के मोहनभोग में रत्तीभर कस्तूरी, माशाभर केसर, दो माशा जायफल और जावित्री, सेर भर मीठा डालना।[14] स्थालीपाक की सभी वस्तुएँ रोगनाशक और वायुशोधक हैं। ये चारों होम-द्रव्य जब अग्नि में डाले जाते है तो अग्नि के द्वारा उनका विघटन होता है और वे अत्यन्त सूक्ष्म अणुरूप में हो जाते हैं। जिस प्रकार अणुबम अत्यन्त प्रभावशाली होता है, उसी प्रकार ये चारों होम द्रव्य सूक्ष्मरूप होकर वायुमंडल को शुद्ध करते हैं। यह वैज्ञानिक तथ्य है कि जो पदार्थ जितना सूक्ष्म होता जाएगा, उतनी ही उसकी शक्ति बढ़ जाती है। होम्योपैथी और बायोकेमिक ओषधियों में यही पद्धति काम करती है। विज्ञान यह मानता है कि कोई भी पदार्थ नष्ट नहीं होता, अपितु उसका केवल रूप-परिवर्तन होता है। यज्ञ में प्रयुक्त हव्य-पदार्थ अग्नि में पड़कर हलका हो जाता है। वह वायु की सहायता से सर्वत्र फैल जाता है। जहाँ तक यज्ञ की सुगन्धित वायु पहुँचती है, वहाँ तक दूषित वायु नष्ट होती है और प्रदूषण का निवारण होता है। यज्ञ में प्रयुक्त थोड़ी वनस्पति के प्रति ज्ञान् जड़ी बूटी व औषधीय पौधों का ज्ञान भी हमे वैदिक साहित्य नो प्राप्त होता है। ऋगदेव के अरण्यनी सूक्त में अरण्यनी अथवा जंगल की देवी को पूजा गया है जिसके द्वारा मानव जाति को प्रकृति के अनेक उपहार प्रदान दिये गये हैं। ऋग्वेद की औषधी सूक्त में पौधों को माता के रूप में पूजा गया है। छान्दोग्य उपनिषद् में पेड़-पौधों के प्रति असीम आस्था व श्रृद्धा दिखाई गई है क्योंकि इनके माध्यम से मनुष्य प्रजाति को तरह-तरह का भोजन प्राप्त होता है। वैदिक ऋचाओं में भी इस बात का निर्देश किया गया है कि प्राकृतिक पर्यावरण व जंगलों का किसी भी तरह का कोई नुकसान ना पहुंचाया जाए। मत्स्यपुराण के अनुसार "एक पृक्ष 10 पुत्रों के बराबर है" ऐसा कहा जाता है।

महाकाव्य काल में पर्यावरण सरोकार :

महाकाव्य महाभारत में धार्मिक, प्राकृतिक एवं लोक कथाओं के माध्यम से प्रकृति एवं पर्यावरण के महत्व को इंगित किया गया है। महाभारत में वन, पेड़-पौधे, वनस्पतियाँ, नदी, पर्वत, तालाब, कूप, झील, पशु-पक्षी, तथा अन्य जंगली जीव-जन्तुओं का विशद् वर्णन किया गया है। महाभारत के अनुशासन पर्व में भीष्म पितामह और युधिष्ठिर के संवाद में उल्लेख आया है कि शुक एक तोता जो कि एक वृक्ष का संरक्षण करता है और जब वह बूढ़ा हो जाता है। तब इंद्र उसे काटने के लिए बोलते हैं किंतु शुक के आग्रह पर वो वृक्ष नहीं काटते हैं।[15] इससे स्पष्ट होता है कि विशिष्ट जन के साथ-साथ सामान्य जन भी वृक्ष वनस्पतियों के देवत्व भाव को भली-भांति समझते थे और उनके सम्मान एवं संरक्षण का विशेष ध्यान देते थे। महाभारत के शान्तिपर्व में पशुओं एवं पक्षियों हिंसा की निंदा की गयी है और इन पशु पक्षियों को परिवार के सदस्यों की तरह माना जाता था। शांति पर्व में शिकारी और कौवे की एक कथा प्राप्त होती है। एक शिकारी जंगल में रात बिताने के लिए एक वृक्ष के नीचे रुकता है और वह वृक्ष पर बसें पक्षियों से निवेदन करता है कि वे उसे यहां आश्रय दें। वनपर्व में वनों के महत्व के बारे में कहा गया है कि वनों से जल संरक्षित होता है, फल, सुगन्धित पुष्प,

14. महर्षि दयानन्द, पृष्ठ 26

15.महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय 5, श्लोक 18-32

और औषधियाँ प्राप्त होती है[16]।" इससे स्पष्ट होता है कि पर्यावरण संरक्षण में वनों और वृक्षों का अत्यधिक महत्व है। महाभारत के अनुशासन पर्व में जल संरक्षण को महान धार्मिक कार्य घोषित करते हुए देश या ग्राम में एक तालाब के निर्माण को धर्म-अर्थ काम तीनों का फल देने वाला बताया गया है -

तस्य पुत्राः भवन्त्येते पादपा नात्र संशयः।

परलोकगतः स्वर्ग लोकांश्चाप्नोति सोऽव्ययान्।।[17]

तथा अपने द्वारा खुदवाये तालाब के किनारे अच्छे-अच्छे वृक्ष लगाकर, उनका पुत्र के समान पालन करने के लिए कहा गया है-

तस्मात् तडागे सदक्षा रोप्याः श्रेयोऽर्थिना सदा।

पुत्रवत् परिपाल्याश्च पुत्रास्ते धर्मतः स्मृताः[18]।।

छठी शताब्दी ई.पू. में पर्यावरण सरोकार :

बौद्ध धर्म ने भी प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा करने के लिए परंपरागत तरीकों को अपनाने की बात भी की जैसेः पेड़-पौधों का रोपन, उनकी रक्षा, जानवरों की सुरक्षा, पर्यावरण में पाये जाने वाले सभी जीवों व नदी तालाबों की सुरक्षा की बात कही है। महात्मा बुद्ध ने वर्षा के समय एक स्थान पर रुकने का आदेश सभी भिक्षुओं को दिया था कि यह समय प्रकृति वापस स्वयं को जन्म दे रही होती है, नए नए पौधें इस समय जन्म लेते हैंऔर इस समय पर उन पर पैर रखने पर वो जन्म नहीं ले पाएंगे।[19] महावीर स्वामी ने भी कहा है कि जो भी प्रकृति प्रदत्त वनस्पति, पृथ्वी, जल, वायु आदि किसी के प्रति भी अपनी असंवेदनशीलता दर्शाता है तो वह अपने स्वंय में अस्तित्व के खतरा पैदा करता है। महावीर स्वामी का संपूर्ण जीवन ही अपने आप में एक श्रेष्ठ उदाहरण है कि प्रकृति के साथ किस तरह से सामंजस्य के साथ रहा जा सकता है। उनके उपदेशों का सार ही पूरा इस बात पर आधारित है। अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्तवाद इत्यादि। अरण्य सूत्र में महावीर स्वामी ने प्राकृतिक संसाधनों के अतिदोहम पर हमेशा चेतावनी दी। जैन धर्म के ग्रंथो के अनुसार भी मनुष्य का लालच उसे अतिदोहन की ओर ले जाता है। अतः वह प्रकृति ही मानव संसाधनों के लुप्त होने का प्रमुख कारण है। यही कारण है कि जैन साहित्य उपयोग पर बल देता है ना कि उपभोग पर।

मौर्य काल में पर्यावरण सरोकार :

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में जंगलों अथवा अरण्य की सुरक्षा की बात की है कौटिल्य की अनुसार राजा का यह धर्म होता है कि शिकार के स्थान के पास ही एक ऐसे जंगल का विकास करें जिसमें जानवरों का संरक्षण किया जा सके। अभ्यारण्य में तरह-तरह के जानवरों के संरक्षण की भी बात कौटिल्य ने कि, जिसमें हाथी जैसे बड़े जानवरों के संरक्षण के साथ अन्य छोटे जानवरों का भी संरक्षण किया जा सके। अभ्यारण्य शब्द का अर्थ ही "बिना किसी भय के" अर्थशास्त्र में भी जानवरों को मारने पर जुर्माना लगाने की भी बात कही है। जानवरों को मारने वालों के लिए तरह-तरह के जानवरों को

16.महाभारत, शांति पर्व, श्लोक 143-147

17.महाभारत, अनुशासन पर्व, 58

18.महाभारत, अनुशासन पर्व, 58

19.बौद्ध ग्रंथ, विनय पिटक, महावर्ग, कंडक - 3

20.कौटिल्य, अर्थशास्त्र, अधिकरण 2, अध्याय 24, सीताध्यक्ष प्रकरण

मारने पर अलग-अलग अर्थदंड (शुल्क) की व्यवस्था थी। ठीक उसी तरह फूलदार, फलदार वृक्षों व छायादार वृक्षों की कटाई पर अर्थदंड लगाने का प्रावधान था। जिसके कारण रहवासी इलाकों में पेड़-पौधे व वृक्षों का संरक्षण करना स्वाभाविक रूप से होता था।[20] इसी तरह कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वृक्षों को काटने व नुकसान पहुँचाने पर आर्थिक दण्ड का प्रावधान था। फलफूलदार एवम् छायादार वृक्ष की कटाई पर छः दण्ड का जुर्माना लगाया जाता था। इस तरह से धार्मिक स्थली, धार्मिक जंगलों की एवम् विश्राम घाट के वृक्षों की कटाई पर आर्थिक दण्ड का प्रावधान था। इन सभी के माध्यम से वन संपदा एवम् वन जीवो का संरक्षण स्वाभाविक रूप से होने लगा।

निष्कर्ष :

उपरोक्त विवेचना के पश्चात् प्राचीन परिस्थितिकीय तत्व के महत्व केवल प्राचीन भारतीय शास्त्रों तक ही सीमित नहीं थे, परन्तु बाद के वर्षों में भी पर्यावरण चेतना की बात हर ग्रंथ में भी कही गई है। वेदों में पर्यावरण को विश्व शक्ति एवं देवी देवता के तुल्य माना और महाकाव्य काल में कथा संवाद के जरिए पर्यावरण संरक्षण के महत्व को समझाया जाता था। साथ ही पर्यावरण संरक्षण को नैतिक धर्म भी बताया गया है। छठी शताब्दी ई पू में पर्यावरण संवेदना को नए आयाम मिले। बाद के जैन और बौद्ध कलाओं में पर्यावरण को एक शक्ति एक बोद्धिसत्व के रूप में दिखाया गया है। मौर्य काल में पर्यावरण संरक्षण के लिए नैतिक शिक्षा के साथ साथ ही प्रशासन की कठोर नीति भी देखने को मिलती है। जो इस बात की ओर संकेत करती है कि समाज कितने गहन रूप में पर्यावरण संरक्षण के प्रति संवेदनशील रहा है।

संदर्भ सूची :

1. ऋग्वेद संहिता (3000 ई.पू.) (1) महर्षि दयानंद सरस्वती (हिंदी) द्वारा भाष्य, दयानंद संस्थान, नई दिल्ली-5 द्वारा प्रकाशित।

2. यजुर्वेद, स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा भाष्य, (हिंदी) दयानंद संस्थान, नई दिल्ली-5

3. यजुर्वेद (तैत्तिरिया संहिता), पं. श्रीपाद दामोदर सतवेलकर द्वारा संपादित। स्वयध्य मंडल, मराडी, जिला बालसोड, गुजरात।

4. श्वेत यजुर्वेद (वाजसनेय संहिता), आर.टी.एच. ग्रिफिथ द्वारा अंग्रेजी में अनूदित, मुंशीराम मनोहर लाल प्रकाशक, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली, 1987

5.अथर्ववेद (नवीनतम वेद), पं. खेम करण दास त्रिवेदी दद्वारा भाष्य, सर्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, महर्षि दयानंद भवन, रामलीला मैदान, नई दिल्ली।

6.शतपथ ब्राह्मण (2000 ई.पू.). पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय द्वारा संपादित, प्राचीन संस्कृत अनुसंधान अध्ययन संस्थान, नई दिल्ली-

7. गोपथ ब्राह्मण (1000 ई.पू. के पश्चात), पं. खेम करण दास त्रिवेदी द्वारा भाष्य, डॉ. प्रजना देवी और मेधा देवी, द्वारा संपादित, अथर्ववेद कार्यालय, 34, लुकरगंज, इलाहाबाद, 1977 करा प्रकाशित।

8. वाल्मीकि रामायण (800 ई.पू. से 200 ई.पू.), गीता प्रेस, गोरखपुर, दो खंडों में हिंदी अनुवाद सहित।

9. महाभारत (400 ई.पू. से 400 ईस्वी.) पं. रामनारायण दत्त शास्त्री, पांडेय राम द्वारा छः खंडों में अनूदित, गीता प्रेस गोरखपुर।

10. मनुस्मृति, हरगोविंद शास्त्री दवारा संपादित, चचैखम्बा संस्कृत श्रृंखला कार्यालय, वाराणसी-221001, 1984.

11. Srinivasan, T.M. (1976), Measurement of Rainfall in Ancient India, IJHS 11.2, 148-57.

12. Shaw, J. and Sutcliffe, J. (2003) Water Management, Patronage Networks and Religious Change: New evidence from the Sanchi dam complex and counterparts in Gujarat and Sri South Asian Studies, 19:1, Lanka, DOI:10.1080/02666030.2003.9628622. 73-104,

13. Jansen M. (1985), Mohenjo-Daro, city of the Indus Valley, Endeavour, New Series. Volume 9, No. 4, Pergamon Press, Printed in Great Britain, London, UK.

14. Jansen M. (1989), Water supply and sewage disposal at Mohenjo-Daro, World Archaeolgy 21 (2), 177-192.

15. Majumdar, P.P. and Jain, S.K. (2018), Hydrology in Ancient India: Some Fascinating Facets. Geophysical Research Abstracts, EGU General Assembly, Vol. 20, EGU2018-8690.

17. COP26, संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन, प्रतिवेदन, 2023